IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 4, October-December, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

भोजपुरिया लोकसंस्कृति और सामाजिक परिवेश : संदर्भ – भिखारी ठाकुर

डॉ. मुन्ना कुमार पांडेय
एसोसिएट प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार : भारतीय साहित्य, समाज और रंगजगत में ऐसे उदाहरण शायद ही मिले, जहाँ कोई सर्जक या रंगकर्मी प्रदर्शन के लगभग सभी पक्षों पर समान दक्षता रखता हो और उसकी कला में समाज का पक्ष भी स्पष्टतया मुखर हो और उसने कहीं से कोई विधिवत स्कूली शिक्षा न ली हो। भिखारी ठाकुर औपनिवेशिक भारत में जन्में बीसवीं शताब्दी के ऐसे ही लोककलाकार थे। गंगा, नारायणी, सरयू नदियों के मध्य और दोनों किनारों पर बसे लाखों भोजपुरियों, देश और विदेश में शौकिया, जबरिया, मजबूरीवश जा बसे भोजपुरी समाज के कंठों में भोजपुरी अंचल का कोई एक सांगीतिक सुर आज भी गुनगुनाता है तो उनमें राग भूपाली की तरह प्रमुख स्वर भिखारी ठाकुर का ही मिलता है। असल में, अपने रंगकर्म के साथ अपने लोक में व्याप्त सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ मशाल उठाने वाले इस कलाकार/रचनाकार पर अपने पारंपरिक मूल्यों की भी गहरी छाप है। वे अपने विरासत में मिले इन मूल्यों के बावजूद जड़ता के, यथास्थितिवाद के पैरवीकार न होकर प्रयासों में खालिस प्रगतिशील मूल्यों वाले सर्जक रहे, जिसमें परंपरा के साथ एक सामयिक और भविष्योन्मुखी सार्थक दृष्टि रही है। शायद यही वजह है कि भिखारी ठाकुर न केवल भोजपुरी बल्कि भारतीय लोकनाट्य और लोकसांस्कृतिक विरासत की विराट उपस्थिति हैं।

बीज शब्द : भिखारी ठाकुर, रंगकर्म, रंगजगत, लोक, लोक साहित्य, लोककला, लोकसंस्कृति, श्रमिक संस्कृति, पलायन, सामाजिक विमर्श, साहित्य, अध्यात्म, धर्म, चिंतन, भोजपुरी के भारतेन्दु, भोजपुरी के शेक्सपियर

मूल लेख : अमूमन भिखारी ठाकुर के रंगकर्म या नाट्यकला पर बात करते हुए अधिकतर समीक्षक उनके मंचीय विशेषताओं के आसपास ही रुक जाते हैं अथवा उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'बिदेसिया' का आधार लेकर उनकी गिनती पलायन की पीड़ा को रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने वाले लोक कलाकार तक सीमित कर देते है। भारतीय लोक साहित्य में गहरे पैठने पर हमें मुख्य धारा के साहित्य और कलाकर्म के बरक्स कई तीखे वैचारिक प्रश्न मिलते हैं कि अध्येता भारतीय लोकसाहित्य के गांभीर्य को जान-पढ़ कर आश्चर्य में पड़ने पर मजबूर हो जाता है। भोजपुरी जातीय अस्मिता के महानायक भिखारी ठाकुर का साहित्य भी ऐसा ही है और उनका रंगकर्म इस इलाके ही नहीं बल्कि भारतीय लोकनाट्य, लोकसंस्कृति की शानदार विरासत का परिचायक और धरोहर भी हैं। प्रख्यात कवि श्री केदारनाथ सिंह की यह पंक्तियाँ भोजपुरी और पूरे पुरबियों के बीच भिखारी ठाकुर की लोकप्रसिद्धि का बयान ही है -

"ठनकता था गेंहुअन
तो नाच के किसी अँधेरे कोने से
धीरे-धीरे उठती थी
एक लंबी और अकेली
भिखारी ठाकुर की आवाज़"[i]

प्रख्यात कवि श्री केदारनाथ सिंह की यह पंक्तियाँ भोजपुरी और पूरे पुरबियों के बीच भिखारी ठाकुर की लोकप्रसिद्धि का बयान ही है। रंग-समीक्षक हृषिकेश सुलभ ने भी भिखारी ठाकुर की आवाज़ को 'अधरतिया की आवाज़'[ii] कहा है। जब भी भोजपुरी संस्कृति और कला-रूपों पर बात होती है, भिखारी ठाकुर का नाम सबसे पहले जुबान पर आता है। डॉ. केदारनाथ सिंह ने 'नई कविता के मंच पर भिखारी ठाकुर' शीर्षक लेख में लिखा है –" वे (भिखारी ठाकुर) सच्चे अर्थों में लोककलाकार थे, जो मौखिक परंपरा के भीतर से उभर कर आये थे, पर इनके नाटक और गीत हमें लिखित रूप में उपलब्ध हैं...वे एक लोक-सजग कलाकार थे, इसलिए कोरा मनोरंजन उनका उद्देश्य था। उनकी हर कृति किसी-न-किसी सामाजिक विकृति या कुरीति पर चोट करती है और ऐसा करते हुए उसका सबसे धारदार हथियार होता है – व्यंग्य।"[iii] ऐसा होने की कई वाजिब वजहें हैं, जिसमें तत्कालीन परिवेशजन्य परिस्थितियाँ सबसे प्रखर थी।

भारतीय साहित्य, समाज और रंगजगत में ऐसे उदाहरण शायद ही मिले, जहाँ कोई सर्जक या रंगकर्मी प्रदर्शन के लगभग सभी पक्षों पर सामान दक्षता रखता हो और उसने कहीं से कोई विधिवत शिक्षा न ली हो। अमूमन जितने भी रंगकर्मियों ने अपनी लोक-संस्कृति का हिस्सा होकर अपने रंगकर्म को विकसित किया अथवा उसको दूसरी संस्कृतियों से भी परिचय कराया, वह सभी किसी-न-किसी स्कूल के सीखे हुए, दक्ष और सुशिक्षित कलाकार थे। फिर चाहे वह महान रंगकर्मी हबीब तनवीर, एच.कन्हाईलाल या रतन थियम ही क्यों न हों। इन पंक्तियों के लिखने का अभीष्ट इन रंगकर्मियों या उनके रंगकर्म से भिखारी ठाकुर की तुलना करना नहीं है, ना तुलना हो सकती है। ये सभी रंगकर्मी अलग-अलग परिस्थितियों में अपनी-अपनी लोक-संस्कृति, अपनी कला जनमानस में सिद्ध कर चुके हैं और किसी परिचय के मुहताज नहीं, पर भिखारी ठाकुर के संदर्भ इनका जिक्र इसलिए जरुरी हो जाता है, क्योंकि ये भी भिखारी ठाकुर की ही तरह अपनी संस्कृति और लोक साहित्य के पैरवीकार रहे हैं। इनकी बात करना इसलिए भी जरुरी हो जाता है कि भिखारी ठाकुर को इन लोगों की तरह विरासत में न तो कोई बेहतर प्लेटफॉर्म मिला, ना ही आखर

ज्ञान हेतु कोई विधिवत व्यवस्था। फिर भी उनके भीतर सीखने की, कुछ करने की जो ललक थी, वही उनको भीड़ से अलग खड़ी करती है। वह भी अपने पुरनियों की तरह दाम कमाने कलकत्ते की ओर गए थे पर मेदिनीपुर आदि इलाकों में जात्रा, बाउल, रामलीला और अन्य धार्मिक नाट्य परंपराओं से उनका परिचय हुआ और उन्हें अपनी मिट्टी की सांस्कृतिक शून्यता का भान हुआ। भिखारी ठाकुर के समाज में लोक परंपरा में कुछ नाट्य रूप थे पर उनका एक समावेशी, समेकित रूप नहीं था, जो किसी एक मंच पर इस इलाके का प्रतिनिधि बनता सो यह चिंता उनमें व्याप्त हुई और फिर जो निकला वह भोजपुरी की सांस्कृतिक थाती बन गया।

कलाकार अथवा साहित्यकार अपने समय-समाज से निरपेक्ष होकर सर्जना-रचना नहीं कर सकता। एक उत्कृष्ट और जागरूक रचनाकार की कलम अपने देश-काल की परिस्थितियों का बयान दर्ज करती है, जिससे कि वर्तमान और आने वाली पीढ़ियाँ अपने उस लोक-सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश की उन सच्चाईयों से रु-ब-रु हो सके, जो उस समाज और समय में व्याप्त हो। भिखारी ठाकुर भी अपने समय के ऐसे ही सर्जक, भोक्ता थे, जिन्होंने अपने समय की सामंती मानसिकता, जातिवादी सोच, वर्ग-विभेद की राजनीति, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विचलन, श्रमिक संस्कृति, पलायन और पीछे रह गयी प्रोषितपतिकाओं की वेदना को प्रत्यक्षतः देखा ही नहीं, बल्कि शामियाने के बीचों-बीच मंचासीन होकर उन सवालों से दो-दो हाथ करने की प्रेरणा भी दी। रंगकर्म एक जनवादी कला है और भिखारी ठाकुर मूलतः प्रगतिशील, जनवादी रंगकर्मी/कलाकार थे। ऐसे प्रगतिशील सर्जकों को लोक यूँ ही नहीं छोड़ देता उसके लिए भी यथास्थिति की पोषक शक्तियाँ कई दुश्वारियाँ पैदा करती हैं, पर सोना आग में तप के और निखरता है। यह बात भिखारी ठाकुर पर अक्षरशः लागू होती है। कई दफे यह स्थितियाँ होती हैं, कि उस कलाकार/सर्जक का मूल्यांकन उसके समय में नहीं हो पता है। इसके कई कारण हो सकते है। भिखारी ठाकुर की स्थिति भी इससे तनिक भिन्न थी। फिर भी, कुछ लंबी नाक वालों को भिखारी ठाकुर से दिक्कतें से थीं पर भिखारी ठाकुर को उस समय के साहित्यिक शक्तियों ने पहचाना और उन्हें विभिन्न उपाधियों यथा ‘अनगढ़ हीरा’, ‘भोजपुरी के शेक्सपियर’,’भोजपुरी के भारतेंदु’ आदि से नवाजा। पर सामंती ताकतें गाल बजाने में ही मशगूल रहीं और उन्हें एक नचनिया, लौंडा नाच करने वाला ही मानती रही। भोजपुरी के एक कवि शिवनंदन भगत, जो भिखारी ठाकुर के ही सामयिक थे, ने उनके विरोध में एक कविता भी लिखी -

“जाति के हजाम भईले, पेशा के नापाक कईले
हिजरा के गिनती में गईले भिखरिया
दोकड़ा के सेंदुर अवसर, बुढ़िया बनके नाच कईले
रोपेया में इज्जति गँववले भिखरिया.”[iv]

इसके अलावा रघुवंश नारायण सिंह जी ने भी महेश्वर प्रसाद की पुस्तक ‘जनकवि भिखारी’ की समीक्षा में कुछ ऐसी ही बातें ऐसी कही हैं, जो तत्कालीन सोच का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत करती हैं। मसलन “बहुत दिन पहले आरा से निकलने वाले 'भोजपुरी'में श्री बीरेंद्र किशोर का एक लेख छपा था ‘भोजपुरी के शेक्सपियर भिखारी ठाकुर’। बहुत लोगों ने जब उसे पढ़ा तो अचरज में पड़ गए,सिहर गए कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। यह तो अजब मेल बैठाया गया, ऐसा बहुत लोगों ने कहा। बात सही भी थी बाकी राहुल बाबा (सांकृत्यायन जी) भिखारी को महाकवि कह चुके थे। अब हम लोग क्या करें...उन्होंने भोजपुरी की जान कर (जानते बूझते) सेवा थोड़ी न की थी। उन्हें तो नाचना गाना था। पहले तुलसी, कबीर, सुर वगैरह के पद को कंठ किया, बाद में सरस्वती की कृपा उन पर हुई तो खुद भी पद जोड़ने लगे। मुझे शक है कि भिखारी कभी नाटककार के रूप में गिने जायेंगे। उन्हें नाटक से क्या मतलब ? वे अंक, गर्भांक जानने कहाँ गये? उनके सभी खेल, तमाशे अपने हैं, जिससे देहाती गंवारू जनता को मोहा, खींचा जा सके उन्होंने वही नाचा-गाया, इनका सब ‘बैले’ हो सकता है, जिसे नाच-गान के साथ रूपक कहा जाए, तब शायद कुछ सधे तो सधे, भिखारी में नाटकीयता है, वे रूप बनने और बनाने में नक़ल उतारने में भी सफल खिलाड़ी है.”[v]

ऐसा नहीं है कि अपने समाज के निचले पायदान पर खड़े जन के पक्ष में अपनी आवाज मुखर करना भिखारी ठाकुर ठाकुर के लिए आसान था पर वह एक कूटनीतिक चतुराई के साथ उनके पक्ष में उपस्थित थे। फिर लोक कलाकारों-सर्जकों को अपने समय में इस तरह के विरोध के स्वर सुनने को मिलते ही हैं, जो समय के साथ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ ही साबित हो जाते हैं। रघुवंश जी ने अपने इस लेख/समीक्षा में जिस तरह की चिंता की और ध्यान दिलाया था कि भिखारी विरोधियों को यह लगता था कि वे कभी सूर, कबीर, तुलसी सम पद नहीं लिख पाएँगे और यदि लिख लिया जो जग-प्रसिद्ध न हो सकेंगे, वह बात निर्मूल ही साबित हुई। भिखारी ठाकुर ने तुलसी, कबीर, सूर की तरह कविताएँ भी लिखीं और नाटक के साथ-साथ लोगों ने उनकी कवित्व शक्ति को भी पहचाना। कवि रूप में भी उनकी ख्याति किसी से छुपी नहीं हैं। भिखारी ठाकुर ने धर्म आधारित कवितायेँ भी लिखी। राधेश्याम बहार में कृष्णकथा परंपरा का परिचय है। इसका कारण स्पष्ट है कि “लोक साहित्य का मूल आधार धर्म रहा है। सृष्टि के सभी मानव मूल रूप में धर्म में आस्था रखते हैं। कृष्णदेव उपाध्याय ने इस संबंध में लिखा है कि धर्म की आधारशिला पर ही लोक साहित्य की प्रतिष्ठा हुई।” भिखारी ठाकुर इसके अपवाद नहीं थे। साथ ही, वह लोकसंस्कृति के उस पक्ष के पैरवीकार थे, जहाँ “संस्कृति के अंतर्गत, समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक व्यवस्था का सम्मिलित प्रवाह निरंतर गतिमान होता है। ”[vi]

भिखारी ठाकुर सजग चेतना के कलाकार थे, उनके सामने परिवार का विघटन, पति के परदेस जाने के बाद घर में अकेले रह गयी उसकी ब्याहता के सामने घर के भीतर और समाज में उपस्थित खतरे, लोक जीवन के अन्य दुःख-दर्द, हर्ष-उल्लास, पर्व-त्यौहार आदि का दृश्य साक्षात था. जाग्रत मस्तिष्क का यह कलाकार इन सब स्थिति-परिस्थितियों से निरपक्ष नहीं रह सकता था। इसलिए उनका साहित्य, उनकी कला अपने समय की सामाजिक चेतना और स्थितियों का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। उनकी सर्जनात्मकता की शक्ति इसमें थी कि उनके रचनाकर्म में भोजपुर प्रान्त की तद्-युगीन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक प्रवृतियों, सच्चाईयों का समावेश था, जो किसी भी लोक साहित्य, लोककला का एक अनिवार्य पक्ष है। एक मशहूर कथन है कि संस्कृतिशून्य व्यक्ति निरा पशु होता है। संस्कृति मनुष्य की जीवन जीने की एक बुनियादी शैली और गुण है। इस स्तर से भी भिखारी ठाकुर भोजपुरी लोक-संस्कृति के अगुआ नायक थे।

जिनकी रचनाओं, नाट्य-प्रदर्शनों से व्यक्ति अपने-आप को, अपनी संस्कृति, अपने समाज, परिवेश को समझता रहा है। भिखारी ठाकुर का कद इतना बड़ा है कि उन्हें किसी एक फ्रेम में मापना संभव ही नहीं। बस इतना ही कि भोजपुरी, पुरबी संस्कृति का ध्वज भिखारी ठाकुर के हाथ में है और इस संस्कृति को, समाज की संकल्पना एवं अध्ययन उनके बिना संभव नहीं। भिखारी ठाकुर भोजपुरी प्रान्त के सांस्कृतिक अध्ययन में एक अनिवार्य जरुरत बनके सामने आते हैं। इस इलाके में प्रवसन की परंपरा पुरानी है और भिखारी ठाकुर इस के भुक्तभोगी रहे थे। बीसवीं सदी में इस इलाके से गुजरने वाली रेलें इस इयालके की स्त्रियों के लिए उस सौतन/बैरन सरीखी थी, जो उनके प्रियजनों को उनसे दूर लिए जाती थी। रेलों के साथ इस समाज में आर्थिक स्थितियाँ भी इसकी एक बड़ी वजह थी और भिखारी ठाकुर के लिए यह सभी दृश्य अपने देखे महसूसे थे। इसका एक उदाहरण सामने है कि भोजपुरी प्रदेशों ही नहीं बल्कि समस्त पूर्वी श्रमिक संस्कृति में एक लोक-प्रचलित गीत सुनने में आता है :

“रेलिया ना बैरी, जहाजिया न बैरी
से पईसवा बैरी ना
मोर सैयां के बिलमावे से पईसवा बैरी ना”[vii]

भारतवर्ष का पूर्वांचल प्रांत गरीबी, बाढ़, सूखा जैसे कई मारों से टूटा हुआ प्रान्त है. बिना किसी आदर्शवादी चाशनी के कहें तो पैसा जीवन जीने की तीन मूलभूत जरूरतों में सबसे ऊपर है। इस प्रान्त के कई गाँव आज भी नौजवानों से खाली हैं। कोई इसी दो पैसे के फेर में पूरब की ओर कोलकाता, असम गया हुआ है, तो कोई मुंबई, दिल्ली, पंजाब में अपमानित होकर रह रहा है, खाड़ी देशों की ओर जाने वालों की संख्या किसी से छुपी नहीं है। पीछे रह गए हैं बूढ़े माँ-बाप, बच्चे और रोती-सुबकती पत्नियाँ। राजकपूर के ‘श्री420’[viii] का पुरबिया राजू इसी पैसे के लिए मुम्बई जाता है, ‘दो बीघा जमीन’[ix] का किसान कोलकाता में हाथ रिक्शा खींचता है। भोजपुरिया समाज में आज़ादी से पहले की यह दशा आज भी वैसी ही है। भिखारी ठाकुर समय से आगे देख रहे थे। बिदेसिया तब भी था, आज भी है, बस रूप-रंग-ढंग बदला है। भिखारी ठाकुर इस नब्ज़ की धड़कन को जानते थे।

बद्रीनारायण थोडा आगे बढ़कर भिखारी ठाकुर को समस्त भारत के किसानों की दुर्दशा का चितेरा घोषित करते हुए लिखते हैं “भिखारी ठाकुर में भारतीय गाँव-जीवन के आर्थिक अपवाय की दर्दनाक गाथा है। पुलिस दमन, सामाजिक विसंगतियाँ नए आर्थिक दबावों से सामाजिक संबंधों के टूटन की जितनी सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक समझ भिखारी ठाकुर के साहित्य में मिलती है, उतना तत्कालीन अभिजात स्वीकृत तथा शिक्षित रचनाकारों की रचनाओं में नहीं दिखाई पड़ता।”[x] भारतीय रंगजगत में दूर-दूर तक ऐसा रंगकर्मी नज़र नहीं आता, जो अपने तमाम सीमाओं के बावजूद इतनी पैनी और सूक्ष्म संवेदनशील दृष्टि रखता है।

भिखारी ठाकुर बीसवीं शताब्दी के लोक कलाकार थे, जिसने वैश्विक प्रसिद्धि और ऊँचाईयाँ पाई। सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ मशाल उठाने वाले इस कलाकार/रचनाकार पर अपने पारंपरिक मूल्यों की भी छाप थी। वे अपने विरासत में मिले इन मूल्यों के बावजूद जड़ता के, यथास्थितिवाद के पैरवीकार न होकर प्रयासों में खालिस प्रगतिशील थे। वे नाच मंडली से जीवन यापन और उसी नाच के मंच से कबीर की भांति अपने कुशल अभिनय से उस सामंती समाज का नकली चेहरा सबके सामने ले आते थे। हालांकि भिखारी ठाकुर का परिवेश भी मध्यकालीन समाज-व्यवस्था से बहुत अलग नहीं था। भिखारी ठाकुर जिस तरह के जातिगत संरचना से आते थे, वहाँ इस पूरी दकियानूसी सिस्टम से सीधे-सीधे दो-दो हाथ करना भिखारी ठाकुर के लिए संभव नहीं था। अतः इस व्यवस्था से टकराना या इस पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना एक कूटनीतिक चतुराई वाले प्रयास की माँग करता था और भिखारी ठाकुर जैसा कलाकार इस खेल का महारथी था. उन्होंने बड़े ही चतुराई से इस व्यवस्था को उसके बनाये मंच से ही चुनौती दी। जनप्रिय कलाकार के मुँह से अपने पर पड़ती चोट से यह तंत्र तिलमिलाने के अलावा कर ही क्या सकता था।

आज जब भिखारी ठाकुर हमारे बीच नहीं हैं, तब उनके लिखे-खेले नाटक आज के नए विमर्शों के मध्य और भी प्रासंगिक हो उठे हैं। भिखारी ठाकुर का समय औपनिवेशिक समय था, आज उत्तर औपनिवेशिक दौर में भी भिखारी ठाकुर के उठाए प्रश्न हमारे समाज में विद्यमान हैं, चाहे वह दलित वर्ग से सम्बंधित हों या स्त्रियों का पक्ष। आज भी इन प्रश्नों से जूझते बड़े समाज की ओर किसकी दृष्टि है? जिन श्रमिकों का बड़ा चित्रण भिखारी ठाकुर ने किया, उनकी कोई जाति नहीं थी, सब मजबूर, समय और समाज के मारे पूरब के बेटे हैं, जो आज भी पलायन को मजबूर हैं और घर में पीछे रह गयीं उनकी औरतें, बच्चे रोने को मजबूर हैं। भिखारी ठाकुर के साहित्य और रंगकर्म में लोकरंजन की प्रचुरता तो है ही साथ ही सामयिक प्रश्नों के साथ-साथ लोकोपदेश का बड़ा भाव भी है। श्रमिक संस्कृति का इतना बड़ा चितेरा भारतीय साहित्य में दिखाई नहीं देता, जिसके प्रश्नों का जवाब आज तक अनुत्तरित है।

[i] उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ : केदारनाथ सिंह , राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण -1995,पृ.28-31.

[ii] रंगमंच का जनतंत्र, हृषिकेश सुलभ,

[iii] लेख, दैनिक हिंदुस्तान, 5 नवंबर, 2002, पृ.8.

[iv] लेख-भोजपुरी के शेक्सपियर कवि : भिखारी ठाकुर , आधुनिक भोजपुरी के दलित कवि और काव्य, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, गौतम बुक सेंटर, शाहदरा, दिल्ली – 93. पृ.-17 सं.2000.

[v] देखें (मूल लेख भोजपुरी में),समीक्षा , जनकवि भिखारी, रघुवंश प्रसाद सिंह, अंजोर(भोजपुरी पत्रिका), अंक-अक्टूबर-नवम्बर 1967).

[vi] लेख-लोकभाषा और लोक 3 साहित्य : सैद्धांतिक पक्ष, गवेषणा, अक्टूबर-दिसंबर,2008, सं. मीरा सरीन, केंद्रीय हिंदी संस्थान,आगरा,पृ-48.

[vii] द्रष्टव्य,लोक संस्कृति और इतिहास, बद्रीनारायण, लोकभारती प्रकाशन, 15ए,महात्मा गाँधी रोड, इलाहाबाद, सं.1994, के पृष्ठ सं.36 में इस लोकगीत का जिक्र किया है.

[viii] राजकपूर निर्मित्त, निर्देशित,राजकपूर, नर्गिस अभिनीत, हिंदी फिल्म(1954)

[ix] विमल राय निर्देशित,बलराज साहनी, निरूपा रॉय, अभिनीत, हिंदी फिल्म(1953).

[x] लोक संस्कृति और इतिहास, बद्रीनारायण, लोकभारती प्रकाशन, 15ए,महात्मा गाँधी रोड, इलाहाबाद,पृ-38.